THE HINDU
INDIA'S NATIONAL NEWSPAPER SINCE 1878

दैनिक समाचार विश्लेषण

The Hindu Important News Articles & Editorial For UPSC CSE

Wednesday, 07 Jan, 2025

Edition : International Table of Contents

पेज 01 पाठ्यक्रम: सामान्य अध्ययन II: भारतीय राजनीति / प्रारंभिक परीक्षा	चुनाव आयोग ने सुप्रीम कोर्ट से कहा विदेशियों को बाहर करना उसका कर्तव्य है
पेज 07 पाठ्यक्रम: सामान्य अध्ययन III: पर्यावरण / प्रारंभिक परीक्षा	सिर्फ जंगल ही नहीं: घास के मैदान भी राष्ट्रीय जलवायु योजनाओं में क्यों शामिल हैं
पेज 10 पाठ्यक्रम: सामान्य अध्ययन II: शासन / प्रारंभिक परीक्षा	भारत के कौशल परिणामों और कार्यबल की तैयारी पर पुनर्विचार
पेज 11 पाठ्यक्रम: सामान्य अध्ययन II: सामाजिक न्याय / प्रारंभिक परीक्षा	निजीकरण और नीतिगत अंतराल भारत की सार्वजनिक स्वास्थ्य प्रणाली के लिए खतरा है
पेज 11 पाठ्यक्रम: सामान्य अध्ययन III: पर्यावरण / प्रारंभिक परीक्षा	बायोमटेरियल्स क्या हैं और वे कैसे काम करते हैं?
पेज 08 : संपादकीय विश्लेषण सिलेबस : सामान्य अध्ययन III : भारतीय अर्थव्यवस्था	'ऑलवेज-ऑन' अर्थव्यवस्था में डिस्कनेक्ट करने का अधिकार

THE HINDU
INDIA'S NATIONAL NEWSPAPER SINCE 1878

दैनिक समाचार विश्लेषण

पेज 01 : सामान्य अध्ययन II : भारतीय राजव्यवस्था / प्रारंभिक परीक्षा

मतदाता सूची के विशेष गहन पुनरीक्षण (एसआईआर) के संबंध में भारत के सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष चल रही कार्यवाही ने भारत के चुनाव आयोग (ईसीआई) के दायरे पर एक महत्वपूर्ण संवैधानिक बहस को सामने ला दिया है।

आयोग ने जोर देकर कहा है कि एसआईआर न तो "समानांतर" राष्ट्रीय नागरिक रजिस्टर (एनआरसी) है और न ही नागरिकता पर संघ के विशेष अधिकार क्षेत्र पर अतिक्रमण है, बल्कि स्वतंत्र और निष्पक्ष चुनाव सुनिश्चित करने के लिए अपने जनादेश से प्रवाहित एक संवैधानिक दायित्व है। यह विवाद भारत के लोकतांत्रिक ढांचे के मूल को छूता है, जहां नागरिकता राजनीतिक भागीदारी का आधार बनती है।

EC tells SC it has duty to weed out foreigners

- Poll body defends SIR in the Supreme Court, insists it has power to verify citizenship status
- EC stresses that NRC register includes all citizens; the electoral rolls only consider those above 18
- Counsel for the EC says the Constitution is citizen-centric; the central theme is citizenship

Krishnadas Rajagopal
NEW DELHI

The Election Commission of India (EC) began its defence of the ongoing special intensive revision (SIR) of electoral rolls before the Supreme Court on Tuesday by dismissing claims that it is conducting a "parallel" National Register of Citizens (NRC) as sheer "rhetoric".

The poll body maintained that it has the "constitutional power, even a constitutional duty" to ensure that not a single foreigner, as far as possible, occupies space in the nation's electoral rolls.

The SIR kicked off in Bihar last year and expanded to cover 12 more States and Union Territories in the ongoing second phase.

"We have a constitutional duty, and not just a constitutional power, to ensure no foreigners are there on the electoral rolls. It is not important how many foreigners are found... It was repeatedly asked of us to show how many foreigners were found in Bihar, but that is not important. Even if there was one foreigner, he had to be excluded. We are not concerned with the rhetoric of the political parties. They may be right or wrong. As the Election Commission, it is our constitutional duty to ensure there are no foreign voters as far as possible," senior advocate Rakesh Dwivedi, appearing for the EC, clarified before a Bench headed by Chief Justice of India Surya Kant.

Faulty comparison

Mr. Dwivedi said the comparison of the SIR with the NRC was devoid of truth. The EC differentiated between the NRC conducted in Assam and the "special revision" of electoral rolls underway in the State.

> We are not concerned with the rhetoric of the political parties.... it is our constitutional duty to ensure there are no foreign voters as far as possible
>
> **RAKESH DWIVEDI**
> Senior advocate for the Election Commission

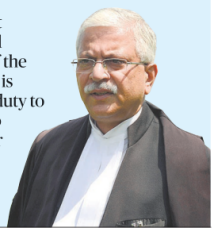

"The NRC register includes all the people, all citizens, whereas, in electoral rolls it is citizens who are above 18 years of age. Less than that they are not in the electoral roll. A person of unsound mind is excluded from the electoral roll, but is part of the NRC. Preparation of the electoral roll is not a parallel NRC on the face of it," Mr. Dwivedi contended.

The senior counsel argued that it was for the Centre to issue a 'national identity card' and maintain a 'National Register of Indian Citizens' and, for that purpose, establish a National Registration Authority under Section 14A of the Citizenship Act, 1955. On the other hand, the EC drew its power to verify citizenship for the "preparation of the electoral rolls" under Article 324 of the Constitution. Mr. Dwivedi said the Constitution was "citizen-centric", which meant 'citizenship' was a central theme.

"All the important functionaries of the three organs of governance have to be citizens of India, be it the President, Vice-President, MPs, MLAs, or judges of the constitutional courts. One of the conditions is that they be citizens... No person is eligible to participate in the electoral process unless he is a citizen," Mr. Dwivedi said.

Citizenship status

He noted how citizenship had played a prime part in the struggle for nationhood. The Government of India Act, 1935, had allowed a separate electorate for Europeans, leading to an objection raised in the Constituent Assembly.

"From the aforesaid, it is evident that from its inception, the Constituent Assembly intended that authorities responsible for preparation of electoral rolls would enquire into citizenship and exclude those who were not citizens from the electoral rolls of constituencies. Later, the EC was vested with plenary powers with respect to superintendence, direction, and control over all elections, as well as the power to verify the status of citizenship under Article 324 read with Article 326 (adult suffrage)," Mr. Dwivedi submitted for the poll body.

Even the power of Parliament under Article 327 to frame election laws was "subject to provisions of the Constitution", Mr. Dwivedi said, adding that this means that "the legislative powers of Parliament envisaged under Article 327 are subject to Articles 324 and 326."

Citizenship Act

Addressing the petitioners' submission that citizenship was exclusively the domain of the Union government, the EC counsel pointed to Section 9(2) of the Citizenship Act. "The Central government has exclusive jurisdiction only with termination of citizenship on account of voluntary acquisition of foreign citizenship under this provision," Mr. Dwivedi submitted.

2.89 crore voters deleted in U.P.

NEW DELHI/LUCKNOW
The Election Commission on Tuesday published the draft rolls for Uttar Pradesh under the special intensive revision with 2.89 crore names deleted, the highest for any State or Union Territory where SIR has been held so far. » PAGE 5

पेजभूमि और संदर्भ

- एसआईआर कवायद, जो बिहार में शुरू की गई थी और बाद में कई अन्य राज्यों और केंद्र शासित प्रदेशों में विस्तारित की गई थी, का उद्देश्य गैर-नागरिकों सहित अपात्र प्रविष्टियों को हटाकर मतदाता सूची को अपडेट करना है। याचिकाकर्ताओं ने इस प्रक्रिया को चुनौती देते हुए आरोप लगाया है कि यह असम में की गई एनआरसी कवायद से मिलती-जुलती है और इससे बहिष्करण के परिणाम हो सकते हैं।
- जवाब में, ईसीआई ने एनआरसी और मतदाता सूची के बीच एक स्पष्ट अंतर खींचा है। एनआरसी का उद्देश्य उम्र के बावजूद सभी नागरिकों की पहचान करना है, मतदाता सूची में केवल वे नागरिक शामिल हैं जो 18 वर्ष से अधिक हैं और अन्यथा संविधान के तहत योग्य हैं। आयोग ने इस बात पर जोर दिया है कि मतदाता सूची से बाहर होना सभी कानूनी उद्देश्यों के लिए नागरिकता की स्थिति का निर्धारण नहीं है।

संवैधानिक और कानूनी आयाम

1. **अनुच्छेद 324 और ईसीआई की पूर्ण शक्तियां**

- अनुच्छेद 324 चुनाव आयोग को चुनावों पर "अधीक्षण, निर्देशन और नियंत्रण" की पूर्ण शक्तियां प्रदान करता है।
- आयोग के अनुसार, इसमें यह सुनिश्चित करने की शक्ति और कर्तव्य शामिल है कि केवल नागरिक ही चुनावी प्रक्रिया में भाग लें।

2. **अनुच्छेद 326 और वयस्क मताधिकार**
   - अनुच्छेद 326 भारत के नागरिकों को वोट देने के अधिकार को प्रतिबंधित करता है, इस तर्क को पुष्ट करता है कि मतदाता सूची तैयार करने में नागरिकता का सत्यापन निहित है।
3. **अनुच्छेद 327 और विधायी सर्वोच्चता**
   - यद्यपि संसद के पास अनुच्छेद 327 के तहत चुनाव कानून बनाने की शक्ति है, ऐसे कानून स्पष्ट रूप से संविधान के अधीन हैं।
   - ईसीआई का तर्क है कि अनुच्छेद 324 और 326 के तहत उसके संवैधानिक जनादेश को वैधानिक व्याख्या द्वारा कमजोर नहीं किया जा सकता है।
4. **नागरिकता अधिनियम, 1955**
   - याचिकाकर्ताओं का तर्क है कि नागरिकता का निर्धारण विशेष रूप से केंद्र सरकार के पास है।
   - ईसीआई ने यह कहते हुए इसका प्रतिवाद किया है कि अधिनियम की धारा 9(2) के तहत संघ का अनन्य क्षेत्राधिकार विदेशी राष्ट्रीयता के स्वैच्छिक अधिग्रहण पर नागरिकता की समाप्ति तक सीमित है, न कि चुनावी उद्देश्यों के लिए नियमित सत्यापन।

प्रमुख मुद्दे और चिंताएँ

- **लोकतांत्रिक अखंडता बनाम बहिष्करण जोखिम**: ECI की स्थिति इस सिद्धांत को रेखांकित करती है कि मतदाता सूची में एक भी गैर-नागरिक लोकतांत्रिक वैधता को कमजोर करता है। हालांकि, आलोचकों को डर है कि आक्रामक सत्यापन से वास्तविक नागरिकों का गलत बहिष्कार हो सकता है, खासकर कमजोर आबादी के बीच।
- **संघीय संतुलन**: यह मामला संवैधानिक निकायों और केंद्र सरकार के बीच संतुलन के बारे में सवाल उठाता है, खासकर उन क्षेत्रों में जहां नागरिकता और चुनावी प्रक्रियाएं एक दूसरे को काटती हैं।
- **मिसाल का प्रभाव**: सर्वोच्च न्यायालय की व्याख्या का भविष्य के चुनावी संशोधनों और ECI की स्वायत्तता पर दीर्घकालिक प्रभाव पड़ेगा।

निष्कर्ष

इसके मूल में, विशेष गहन संशोधन पर विवाद चुनावी शुद्धता की रक्षा और व्यक्तिगत अधिकारों की रक्षा के बीच एक गहरे संवैधानिक तनाव को दर्शाता है। चुनाव आयोग का यह दावा कि संविधान "नागरिक-केंद्रित" है, इस मूलभूत सिद्धांत के अनुरूप है कि राजनीतिक भागीदारी केवल नागरिकों के लिए आरक्षित है। साथ ही, सुप्रीम कोर्ट की जांच यह सुनिश्चित करने के लिए महत्वपूर्ण है कि ऐसी शक्तियों का प्रयोग आनुपातिक, पारदर्शी और गैर-मनमाना बना रहे।

दैनिक समाचार विश्लेषण

UPSC प्रारम्भिक परीक्षा अभ्यास प्रश्न

प्रश्न: निम्नलिखित में से कौन सा संवैधानिक प्रावधान नागरिकता को भारत में मतदान के अधिकार से सीधे जोड़ता है?

(a) अनुच्छेद 14

(b) अनुच्छेद 21

(c) अनुच्छेद 326

(d) अनुच्छेद 368

उत्तर: c)

UPSC मुख्य परीक्षा अभ्यास प्रश्न

प्रश्न: स्वतंत्र और निष्पक्ष चुनावों के लिए समावेशिता और वैधता दोनों की आवश्यकता होती है। इस कथन पर गैर-नागरिकों को मतदाता सूची से बाहर रखने में चुनाव आयोग की भूमिका की सर्वोच्च न्यायालय की जांच के संदर्भ में टिप्पणी करें। **(150 शब्द)**

दैनिक समाचार विश्लेषण

पेज 07 : सामान्य अध्ययन III: पर्यावरण/प्रारंभिक परीक्षा

वैश्विक जलवायु शासन ने ऐतिहासिक रूप से वनों को जलवायु परिवर्तन के प्राथमिक प्राकृतिक समाधान के रूप में प्राथमिकता दी है। हालांकि, अंतरराष्ट्रीय जलवायु मंचों पर हाल की बहसें एक बढ़ती वैज्ञानिक सहमति को उजागर करती हैं कि घास के मैदान, सवाना और रेंजलैंड जलवायु शमन, जैव विविधता संरक्षण और सामाजिक न्याय के लिए समान रूप से महत्वपूर्ण हैं। संयुक्त राष्ट्र द्वारा 2026 को रेंजलैंड्स और चरवाहों के लिए अंतर्राष्ट्रीय वर्ष घोषित करने और बेलेम, ब्राजील में COP30 सहित UNFCCC वार्ता में घास के मैदानों को हाशिए पर रखने के साथ चर्चा को नए सिरे से प्रासंगिकता प्राप्त हुई।

Grasslands and shola forest in the upper Nilgiris, a part of the Western Ghats. SATHYAMOORTHY M.

Not just forests: why grasslands also belong in national climate plans

Protecting a biome like grasslands cannot happen in isolation but must come about through goals shared by the various U.N. bodies; unfortunately, there are still debates ongoing about whether biodiversity and climate goals align and how institutions can build synergies

Sutirtha Lahiri

The United Nations has declared 2026 to be the 'International Year for Rangelands and Pastoralists'.

In 2022, a group of scientists from institutions in Tanzania, Zambia, the U.K., the U.S., Germany and Canada wrote an open letter urging the parties of the U.N. Framework Convention on Climate Change (FCCC) to broaden their goals to be inclusive of all biomes on earth, but especially grasslands and savannahs. Their letter, published in *Science*, asserted that even though savannahs are potentially better carbon sinks, forests have hogged the limelight in global climate negotiations. Unfortunately, three years since the letter was written, the UNFCCC climate summits have continued to fall short of addressing this key issue.

The UNFCCC COP30 climate talks took place over the course of 10 days in the city of Belém in Brazil, and it had a major focus on forests. Hosting the bulk of the Amazon River, Brazil had an opportunity to place forests at the centre of its agenda. Early on at the conference, the announcement of the Tropical Forest Forever Facility (TFFF) was exciting to most attendees. With commitments of multi-million-dollar funds from different countries, the TFFF was established to fund countries to keep tropical forests intact.

COP30, which ended with a lack of any concrete roadmap to protect the climate, also signalled a glaring disparity in a global climate action agenda that has continued to favour forests alone. Much like forests, other major biomes the world over are also facing the consequences of climate change and biodiversity loss – and protecting them can also aid climate action.

"Everyone is facing the effects of climate change, but the desert people are facing some of the harshest effects," said Samantha Murray, an Ilka/Wongutha/Nyoongar indigenous person and the CEO of Indigenous Desert Alliance (IDA). "It is getting hotter, and it is getting harder to live here"

The IDA is a network of indigenous community rangers that works to protect and manage the vast desert grasslands that make up more than a third of Australia's landmass.

Just beginning

Grasslands are one of the most threatened ecosystems in the world. The biome has suffered rapid habitat loss due to agriculture, conversion to forests and plantations, the spread of invasive species, and the extraction of fossil fuels. In addition, many governments have suppressed indigenous and local land management techniques such as controlled fires and grazing, leaving forest land to burn during wildfires with greater intensity and to release more carbon into the atmosphere as forests degrade.

Today, the desert grasslands of Australia are reeling under the effects of dry spells and flash floods induced by climate change. These consequences are playing out in tandem with those of the buffel grass (*Cenchrus ciliaris*), an invasive species of grass that hasn't only replaced native grass but which also burns with higher intensity.

Organisations like the IDA have been at the forefront of bringing more attention to the desert grasslands of Australia. Stewarded by indigenous communities, the IDA has been working on the ground to protect their grasslands through culturally appropriate burning regimes, round-the-clock monitoring by indigenous rangers, and invasive species management.

This said, the fight to preserve grasslands has just begun.

"I still think that in my lifetime, there won't be a chance for me to walk up to someone in Melbourne and ask them about climate change, for them to say, 'yes, it is affecting the deserts of our country'," Samatha said, further highlighting that the grasslands are often seen as nothing more than empty spaces and is thus also insufficiently funded by the government.

No cerrado, no Amazon

The same situation in Australia is echoed around the world. Brazil is home to one of the world's most biodiverse savannahs, called the cerrado. Home to eight of the 12 water systems of Brazil, including major river systems like the Sao Francisco and the Tocantins, the cerrado is stressed; in fact the cerrado grasslands face twice as much range loss due to human activities as well as climate change compared to the Amazon rainforests in the country.

Of late, small-scale efforts have been bringing forth the importance of grasslands at the COP summits. Scientists, members of indigenous and local communities, and policymakers have been coming together to advocate for this imperilled biome. At the COP30 itself, big billboards at the central hall of the venue; public demonstrations by indigenous communities living in the cerrado; and special youth groups formed by the Brazilian ministry with representatives from each of the six biomes in the country all brought issues related to grasslands to the participants' attention, even if these efforts were scattered.

Several side events also highlighted grasslands. In one event called 'Cerrado e Amazonia; Conectados Pelas Aguas', Dandara Tonantzin, a federal congresswoman from the state of Minas Gerais in Brazil and coordinator of the Cerrado Defense Group of the Environmental Parliamentary Front, highlighted the crucial role of the cerrado grasslands. In her words: "The Cerrado and the Amazon are two biomes, and brothers, that are connected ecologically. It is important to understand that without the cerrado, there is no Amazon."

A social justice issue

The cerrado today faces multiple pressures from growing agricultural expansion, mining, fire suppression, disenfranchisement of communities' rights to their land, and public policies that protect agribusiness over ecosystems. In addition, 70% of Brazil's agricultural toxic wastes are dumped in this biome, endangering the ecology as well as the people that live there.

Recognising the importance of grasslands, valuing their potential for carbon sequestration, integrating grassland protection in countrywide NDCs, while giving local communities the rights to their land, are the first steps in mainstreaming the protection of grasslands

"We can still choose another path. First, by officially recognising territorial rights and secure demarcations for Indigenous peoples and Quilombolas (Afro-descendent communities in Brazil), Dandara said, highlighting that protecting the cerrado is also a social justice issue. "We need to ensure the implementation of inclusive public policies that integrate the participation of traditional communities in the management of natural resources."

Bridging these narratives from the side events to the negotiating rooms of the COP is a long road. By design, the UNFCCC COP focuses almost exclusively on conversations around managing carbon, while biodiversity and land degradation largely remain the talking points for the U.N. Convention on Biological Diversity (CBD) and the U.N. Convention to Combat Desertification (CCD). To their credit, however, the CBD and the CCD have made better efforts to recognise grasslands in their programmes.

For example, at the UNCCD COP16 conference in Saudi Arabia, there were efforts to highlight the importance of grasslands and rangelands in achieving land degradation neutrality. Through resolution L15, the UNCCD COP officially recognised that rangelands are complex socio-ecological systems and called on its parties to "prioritise policies and investments" and to "improve tenure security in rangelands".

Building bridges

Protecting a biome like grasslands can't happen in isolation but must come about through goals shared by the various U.N. bodies. Unfortunately, there are still debates ongoing about whether biodiversity and climate goals align and how institutions can build synergies. In 1992, the formation of the three Rio Conventions marked a historic first step in bridging the gap between the UNCBD, the UNFCCC, and the UNCCD – and from there a mechanism to cooperate on goals to address climate change, biodiversity loss, and land degradation together.

COP30 also saw the active participation of organisations such as the World Wide Fund for Nature and the International Union for the Conservation of Nature on the matter of these overlooked biomes. In a report jointly released during the conference, titled 'Protecting the overlooked carbon sink', authors from these organisations highlighted a growing need to integrate grasslands in climate negotiations. In its policy recommendation, the report stated that grasslands should be considered in "an integrated manner across all three Rio Conventions to break silos and maximise effectiveness". The report also stated that grasslands must be recognised in the country-specific nationally determined contributions (NDCs), which are national climate action plans that outline a country's commitment to reducing emissions under the Paris Agreement.

Small step for India

Laying bridges between the U.N. bodies is in fact the best way to protect the world's grasslands, and a similar exercise between various branches of the Indian government could benefit the country's grasslands as well. According to a white paper released by the Ashoka Trust for Research in Ecology and the Environment (ATREE), Bengaluru, at the UNFCCC COP16 in Saudi Arabia, grasslands in India come under the purview of 18 Ministries, each with competing interests and policy goals. While the Union Environment Ministry considers grasslands for afforestation purposes, say, the Ministry of Rural Development publishes the "wasteland atlas of India" that often includes grasslands the atlas deems available for conversion to other uses.

If the governing bodies are unified from the national to the multilateral levels, however, the benefits could trickle down through mechanisms such as the country-specific NDCs. In fact, one of India's eight NDCs is "to create an additional carbon sink of 2.5 to 3 billion tonnes of CO2 equivalent through additional forest and tree cover by 2030." By recognising grasslands as a crucial carbon sink, the Indian government can easily encompass this biome, move away from forest-focused carbon sequestration schemes, and give its own climate mitigation efforts a boost.

In a similar vein, a policy brief shared by a group of researchers from Brazil urged the UNFCCC to "adopt the Ecosystem-Based Approach as an immediate pathway" to conserve and sustainably manage "open ecosystems as adaptation actions, enabling their inclusion in Brazil's NDCs".

Recognising the importance of grasslands as unique ecosystems worthy of attention, valuing their potential for carbon sequestration and ecosystem services, integrating grassland protection in countrywide NDCs, all while giving local communities the rights to their land and management practices – these are essential first steps in mainstreaming the protection and sustenance of grasslands worldwide. Creating bridges between the relevant U.N. bodies such that countries can develop unified policies is also crucial.

All these goals can be achieved if the parties to the U.N. uphold the values of multilateralism and prioritise science and civil society over the fossil fuel and agrobusiness lobbies.

(Sutirtha Lahiri is a PhD student in conservation science and the Interdisciplinary Center for the study of Global Change (ICGC) Scholar at the University of Minnesota. sutirtha1996@gmail.com)

घास के मैदान क्यों मायने रखते हैं

1. **प्रमुख लेकिन अनदेखा कार्बन सिंक**
    - घास के मैदान मिट्टी और जड़ प्रणालियों में जमीन के नीचे कार्बन का एक बड़ा हिस्सा जमा करते हैं, जिससे वे जंगलों की तुलना में आग के प्रति लचीले हो जाते हैं।
    - वैज्ञानिक साक्ष्य बताते हैं कि सवाना लंबे समय तक कार्बन पृथक्करण में जंगलों को टक्कर दे सकते हैं या यहां तक कि इससे बेहतर प्रदर्शन कर सकते हैं जब स्थायी रूप से प्रबंधित किया जाता है।
2. **जैव विविधता हॉटस्पॉट**
    - ब्राजील के सेराडो और भारत के अर्ध-शुष्क घास के मैदान जैसे पारिस्थितिक तंत्र अद्वितीय वनस्पतियों और जीवों का समर्थन करते हैं।
    - अकेले सेराडो ब्राजील की बारह प्रमुख नदी प्रणालियों में से आठ को बनाए रखता है, जो इसके हाइड्रोलॉजिकल महत्व को रेखांकित करता है।
3. **जलवायु अनुकूलन और लचीलापन**
    - घास के मैदान सूखे, बाढ़ और मरुस्थलीकरण के खिलाफ बफर हैं।
    - नियंत्रित जलने और घूर्णी चराई जैसी स्वदेशी प्रथाएं जंगल की आग की तीव्रता और पारिस्थितिकी तंत्र के क्षरण को कम करती हैं।

वैश्विक शासन अंतराल

- **जलवायु वार्ता में वन पूर्वाग्रह**: COP30 ने उष्णकटिबंधीय वनों पर बहुत अधिक ध्यान केंद्रित किया, जिसका उदाहरण ट्रॉपिकल फॉरेस्ट फॉरएवर फैसिलिटी (TFFF) जैसी पहलों द्वारा दिया गया है, जबकि घास के मैदानों पर मामूली ध्यान दिया गया है।
- **संस्थागत साइलो:** जलवायु परिवर्तन, जैव विविधता के नुकसान और भूमि क्षरण को अलग-अलग संबोधित किया गया है:
    - **यूएनएफसीसीसी** (कार्बन और उत्सर्जन),
    - **जैविक विविधता पर कन्वेंशन**, और
    - **मरुस्थलीकरण से निपटने के लिए संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन**: इस विखंडन में एकीकृत पारिस्थितिकी तंत्र-आधारित दृष्टिकोण सीमित हैं।
- **कहीं और सकारात्मक कदम**: UNCCD COP16 ने रेंजलैंड को जटिल सामाजिक-पारिस्थितिक प्रणालियों के रूप में मान्यता दी और कार्यकाल सुरक्षा और लक्षित निवेश पर जोर दिया।

सामाजिक न्याय के मुद्दे के रूप में घास के मैदान

- स्वदेशी और पशुपालक समुदाय आजीविका के लिए सीधे घास के मैदानों पर निर्भर हैं।
- ऑस्ट्रेलिया में, स्वदेशी रेंजर नेटवर्क पारंपरिक ज्ञान का उपयोग करके विशाल रेगिस्तानी घास के मैदानों का प्रबंधन करते हैं।

- ब्राजील में, सेराडो क्षरण कृषि व्यवसाय विस्तार, खनन और जहरीले कचरे को डंपिंग से जुड़ा हुआ है, जो स्वदेशी और एफ्रो-वंशज (क्विलोम्बोला) समुदायों को असमान रूप से प्रभावित करता है।
- इस प्रकार, घास के मैदान का संरक्षण अधिकारों, समानता और समावेशी शासन के साथ प्रतिच्छेद करता है, न कि केवल पारिस्थितिकी।

भारत के लिए निहितार्थ

- अशोका ट्रस्ट फॉर रिसर्च इन इकोलॉजी एंड द एनवायरनमेंट (एटीआरईई) के अध्ययन के अनुसार, भारतीय घास के मैदान लगभग 18 मंत्रालयों के अधिकार क्षेत्र में आते हैं, जिन्हें अक्सर "बंजर भूमि" के रूप में लेबल किया जाता है और वनीकरण या डायवर्जन के लिए लक्षित किया जाता है।
- पेरिस समझौते के तहत भारत का एनडीसी घास के मैदानों को देखते हुए कार्बन सिंक के रूप में वन और वृक्षों के आवरण को बढ़ाने पर केंद्रित है।
- घास के मैदानों को वैध कार्बन सिंक के रूप में पहचानना:
    - भारत की जलवायु शमन रणनीति को मजबूत करना,
    - पारिस्थितिक रूप से हानिकारक वनीकरण को रोकें,
    - देहाती आजीविका और जैव विविधता का समर्थन करें।

आगे की राह

- इकोसिस्टम-आधारित दृष्टिकोण का उपयोग करते हुए घास के मैदानों को एनडीसी में एकीकृत करना।
- जलवायु, जैव विविधता और भूमि के लिए एकीकृत नीतियां बनाने के लिए रियो कन्वेंशन (UNFCCC-CBD-UNCCD) को पाटें।
- सामुदायिक अधिकारों और पारंपरिक प्रबंधन प्रणालियों को पहचानें।
- सभी प्रमुख बायोम को शामिल करने के लिए वन-केंद्रित जलवायु नीति से आगे बढ़ें।

निष्कर्ष

जलवायु संकट केवल जंगलों तक ही सीमित नहीं है। घास के मैदान, जिन्हें अक्सर "खाली" या "अवक्रमित" भूमि के रूप में गलत तरीके से चित्रित किया जाता है, दुनिया भर में लाखों लोगों के लिए महत्वपूर्ण कार्बन सिंक, जैव विविधता जलाशय और जीवन रेखा हैं। वैश्विक और राष्ट्रीय जलवायु ढांचे में उनकी निरंतर उपेक्षा एक वैज्ञानिक निरीक्षण और शासन विफलता दोनों का प्रतिनिधित्व करती है। एकीकृत नीतियों, समावेशी संस्थानों और इकोसिस्टम-आधारित दृष्टिकोणों के माध्यम से घास के मैदानों को जलवायु कार्रवाई में मुख्यधारा में लाना वास्तव में समग्र और न्यायपूर्ण जलवायु समाधान प्राप्त करने के लिए आवश्यक है।

दैनिक समाचार विश्लेषण

UPSC प्रारम्भिक परीक्षा अभ्यास प्रश्न

प्रश्न: 'सेराडो', जिसका अक्सर जलवायु और जैव विविधता चर्चाओं में उल्लेख किया जाता है, का सबसे अच्छा वर्णन इस प्रकार किया गया है:

(a) दक्षिण पूर्व एशिया में एक उष्ण उष्ण रेखा वर्षावन बायोम

(b) दक्षिण अमेरिका में एक ठंडा रेगिस्तानी पारिस्थितिकी तंत्र

(c) अटलांटिक तट के साथ एक मैंग्रोव पारिस्थितिकी तंत्र

(d) ब्राजील में एक जैव विविधता वाला सवाना पारिस्थितिकी तंत्र

उत्तर : d)

UPSC मुख्य परीक्षा अभ्यास प्रश्न

प्रश्न: घास के मैदानों का संरक्षण उतना ही सामाजिक न्याय का मुद्दा है जितना कि यह एक पर्यावरणीय मुद्दा है। उपयुक्त वैश्विक और भारतीय उदाहरणों के साथ चर्चा कीजिए। **(150 शब्द)**

THE HINDU
INDIA'S NATIONAL NEWSPAPER SINCE 1878

दैनिक समाचार विश्लेषण

पेज 10 : सामान्य अध्ययन II : शासन / प्रारंभिक परीक्षा

पिछले एक दशक में, भारत ने अपने जनसांख्यिकीय लाभांश का दोहन करने के लिए बड़े पैमाने पर कौशल पारिस्थितिकी तंत्र के निर्माण में भारी निवेश किया है। प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना (पीएमकेवीवाई) जैसी प्रमुख पहलों ने 2015 से अब तक 1.4 करोड़ से अधिक उम्मीदवारों को प्रशिक्षित किया है। हालांकि, इस मात्रात्मक विस्तार के बावजूद, कौशल भारत के युवाओं के लिए पहली पसंद की आकांक्षा के रूप में उभरा नहीं है। लगातार कम रोजगार योग्यता, सीमित वेतन प्रीमियम और कमजोर उद्योग स्वीकृति भारत के कौशल ढांचे की प्रभावशीलता, विश्वसनीयता और जवाबदेही के बारे में महत्वपूर्ण सवाल उठाती है।

Rethinking India's skilling outcomes

What prevents skilling from becoming a first-choice pathway for youth? Why has formal vocational training reached only a small share of the workforce? What limits industry participation in public skilling programmes? Why do Sector Skill Councils lack credibility with employers?

EXPLAINER

Pravesh Dudani

The story so far:

Over the last decade, India has built one of the largest skilling ecosystems in the world. Between 2015 and 2025, India's flagship skilling programme, Pradhan Mantri Kaushal Vikas Yojana, has trained and certified around 1.40 crore candidates. Yet skilling has not become a first-choice pathway for most young Indians. Employability outcomes remain uneven, and Periodic Labour Force Survey (PLFS) data show that wage gains from vocational training are modest and inconsistent, particularly in informal employment, where most workers are absorbed, offering limited recognition for certified skills and little visible improvement in quality of life.

Why does skilling still fail to inspire aspiration?

India's Gross Enrolment Ratio (GER) stands at 28%, but the National Education Policy 2020 aims to raise it to 50% by 2035. This cannot be done just by expanding traditional education; it must be integrated into higher education pathways in a way that makes it easier for people to learn new skills.

Despite years of investment, only about 4.1% of India's workforce has received formal vocational training, barely improving from about 2% a decade ago (PLFS; World Bank). In contrast, across OECD countries, about 44% of upper-secondary learners are enrolled in vocational programmes, rising to around 70% in countries such as Austria, the Czech Republic, Finland, the Netherlands, the Slovak Republic and Slovenia.

The India Skills Report 2025 shows that post-degree skilling by graduates is not a mainstream or high-participation behaviour in India. If skilling is to scale meaningfully, it must travel through and alongside formal education.

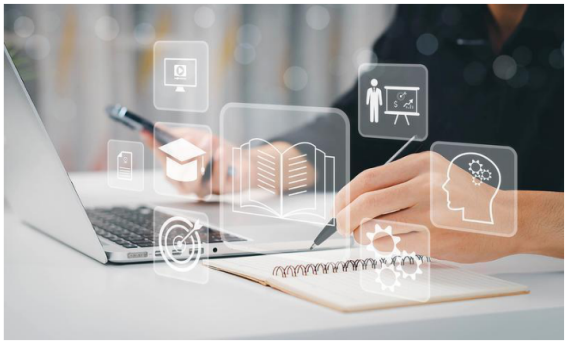

GETTY IMAGES

How can industry contribute meaningfully?

Industry is the single largest beneficiary of effective skilling and trained manpower. According to various industry reports, high attrition, long onboarding cycles, and productivity losses impose real costs, with attrition rates of 30-40% common across retail, logistics, hospitality, and manufacturing alone.

Yet, there is still not much participation from the industry. Most employers do not use public skilling certifications as hiring benchmarks; instead, they use internal training, referrals, or private platforms (NITI Aayog; World Bank). The National Apprenticeship Promotion Scheme (NAPS) has increased participation, but its effects are still unequal, particularly among bigger companies.

Industry is neither incentivised nor obligated to meaningfully contribute to relevant curriculum development, certification standards, or assessment rigour at scale. As long as skilling remains something industry consumes rather than co-designs, it will lag labour-market reality.

Why do Sector Skill Councils fail?

The most serious structural failure in India's skilling ecosystem lies with the Sector Skill Councils (SSCs).

SSCs were created with a clear mandate: to act as industry-facing institutions that define standards, ensure relevance, and anchor employability. In effect, they were meant to own the skilling value chain – from identifying industry demand to certifying job readiness. That mandate has not been fulfilled.

Today, responsibility is fragmented: training is delivered by one entity, assessment by another, certification by SSCs, and placement by someone else – if at all. Unlike higher education or technical institutions such as polytechnic diploma colleges, where reputational risk enforces accountability, the skilling system diffuses responsibility without consequence.

This fragmentation has eroded trust. Employer surveys frequently indicate that SSC credentials have limited signalling value compared to degrees or prior work experience. Standards exist, but employers do not reliably hire against them. Industry-led certification models illustrate what is missing. Certifications from AWS, Google Cloud, or Microsoft work because the certifier's credibility is at stake. Assessments are fair and graded, not binary, and employers know what a certified candidate can do.

SSCs were meant to play this role at a national scale. Instead, they have largely limited themselves to standards creation, without owning outcomes. Until SSCs are held accountable for employability, certification will remain symbolic rather than economic.

The ongoing overhaul of standard-setting bodies must confront this directly.

How can skilling drive sustained economic growth?

India's skilling challenge is a failure of accountability, not of intent or government funding.

Expanding NAPS and deepening industry integration can become one of the fastest levers to improve job readiness at scale by pushing skilling into the workplace. Initiatives like PM-SETU, the central scheme for modernisation of ITIs, point towards stronger execution models where industry ownership and accountability are built into programme design.

When skills are embedded in degrees, when industry is treated as a co-owner, and when SSCs are made answerable for placement outcomes, skilling move from fragmented welfare intervention to a pillar of national economic empowerment.

That shift is not just about jobs. It is about the dignity of labour, productivity, and India's ability to convert its demographic strength into sustained national growth.

Pravesh Dudani is the Founder & Chancellor of Medhavi Skills University and an Advisor to NSDC

THE GIST

- Despite PMKVY training around 1.40 crore candidates, employability outcomes remain uneven, wage gains are modest and inconsistent, and informal employment offers limited recognition for certified skills and little visible improvement in quality of life.
- Limited industry participation, uneven NAPS outcomes, and the structural failure of Sector Skill Councils — fragmented responsibility, weak signalling value of certifications, and lack of accountability for employability — have reduced skilling to a fragmented welfare intervention rather than a driver of sustained economic growth.

भारत में कौशल की वर्तमान स्थिति

- **औपचारिक व्यावसायिक प्रशिक्षण की कम पैठ**: आवधिक श्रम बल सर्वेक्षण (पीएलएफएस) और विश्व बैंक के आंकड़ों के अनुसार, भारत के कार्यबल के केवल 4.1% ने औपचारिक व्यावसायिक प्रशिक्षण प्राप्त किया है - एक सुधार, लेकिन अभी भी वैश्विक मानकों से बहुत कम है।

- **अंतर्राष्ट्रीय तुलना:** ओईसीडी देशों में, लगभग 44% उच्च-माध्यमिक छात्र व्यावसायिक शिक्षा में नामांकित हैं, कुछ यूरोपीय देशों में 70% से अधिक है। यह विरोधाभास डिग्री-आधारित शिक्षा के प्रति भारत के संरचनात्मक पूर्वाग्रह को उजागर करता है।
- **राष्ट्रीय शिक्षा** नीति 2020 का उद्देश्य 2035 तक सकल नामांकन अनुपात (GER) को 50% तक बढ़ाना है, जिसमें स्पष्ट रूप से यह स्वीकार किया गया है कि कौशल को समानांतर प्रणाली बने रहने के बजाय उच्च शिक्षा मार्गों के साथ एकीकृत किया जाना चाहिए।

कौशल में आकांक्षात्मक मूल्य का अभाव क्यों है?

1. **कमजोर श्रम-बाजार संकेत**
    - पीएलएफएस डेटा व्यावसायिक प्रशिक्षण से मामूली और असंगत वेतन लाभ का संकेत देता है, विशेष रूप से अनौपचारिक क्षेत्र में जहां अधिकांश कुशल श्रमिकों को अवशोषित किया जाता है।
    - प्रमाणन अक्सर बेहतर नौकरी की गुणवत्ता या सामाजिक गतिशीलता में तब्दील नहीं होता है।
2. **औपचारिक शिक्षा से डिस्कनेक्ट करें**
    - इंडिया स्किल्स रिपोर्ट 2025 से पता चलता है कि पोस्ट-डिग्री स्किलिंग मुख्यधारा का व्यवहार नहीं है।
    - कौशल को एक सम्मानित पेशेवर मार्ग के बजाय एक फॉलबैक विकल्प के रूप में देखा जाता है।

सीमित उद्योग भागीदारी

उद्योग को कम एट्रिशन, कम ऑनबोर्डिंग चक्र और उत्पादकता लाभ के माध्यम से प्रभावी कौशल से सबसे अधिक लाभ प्राप्त होगा। फिर भी:

- अधिकांश नियोक्ता सार्वजनिक कौशल प्रमाणपत्रों को विश्वसनीय भर्ती संकेतों के रूप में नहीं मानते हैं।
- नियुक्ति आंतरिक प्रशिक्षण, रेफरल या निजी प्लेटफार्मों पर अधिक निर्भर करती है, जैसा कि नीति आयोग और विश्व बैंक के अध्ययनों द्वारा उल्लेख किया गया है।
- जबकि राष्ट्रीय शिक्षुता संवर्धन योजना (एनएपीएस) ने प्रशिक्षुता का विस्तार किया है, भागीदारी असमान बनी हुई है, खासकर बड़ी फर्मों के बीच।

पाठ्यक्रम, मूल्यांकन और मानकों को सह-डिजाइन करने के लिए उद्योग के लिए मजबूत प्रोत्साहन या दायित्वों की अनुपस्थिति के परिणामस्वरूप कौशल बेमेल और पुराने प्रशिक्षण मॉड्यूल हो गए हैं।

विश्वसनीयता का संकट: सेक्टर स्किल काउंसिल (एसएससी)

क्षेत्र कौशल परिषदों की कल्पना उद्योग के नेतृत्व वाले निकायों के रूप में की गई थी जो मानकों को परिभाषित करने, कौशल को प्रमाणित करने और रोजगार क्षमता सुनिश्चित करने के लिए जिम्मेदार थे। व्यवहार में, वे इससे पीड़ित हैं:

- **खंडित जवाबदेही**: प्रशिक्षण, मूल्यांकन, प्रमाणन और प्लेसमेंट को विभिन्न संस्थाओं द्वारा नियंत्रित किया जाता है, जिससे जिम्मेदारी कम हो जाती है।

- **कम नियोक्ता विश्वास**: एसएससी प्रमाणपत्रों में डिग्री या उद्योग-ब्रांडेड प्रमाणपत्रों (उदाहरण के लिए, वैश्विक तकनीकी फर्मों द्वारा क्लाउड प्रमाणन) की तुलना में कमजोर सिग्नलिंग मूल्य होता है।
- **आउटकम ब्लाइंडनेस**: एसएससी को शायद ही कभी प्लेसमेंट या वेतन परिणामों के लिए जवाबदेह ठहराया जाता है, जिससे कठोर मानकों को बनाए रखने के लिए प्रोत्साहन कम हो जाता है।

यह संरचनात्मक कमजोरी एक वित्त पोषण या इरादे की कमी के बजाय एक मुख्य शासन विफलता का प्रतिनिधित्व करती है।

आर्थिक और विकासात्मक निहितार्थ

भारत की कौशल चुनौती अंततः उत्पादकता और समावेशी विकास के बारे में है:

- खराब कौशल परिणाम श्रम उत्पादकता और औद्योगिक प्रतिस्पर्धा को कमजोर करते हैं।
- उद्योग के साथ कमजोर एकीकरण भारत को अपने जनसांख्यिकीय लाभ का पूरी तरह से लाभ उठाने से रोकता है।
- पीएम-सेटू (आईटीआई आधुनिकीकरण) और विस्तारित शिक्षुता जैसी पहल स्पष्ट स्वामित्व और जवाबदेही के साथ निष्पादन मॉडल की ओर बदलाव का संकेत देती हैं।

आगे की राह

- **मुख्यधारा की शिक्षा के हिस्से के रूप में कौशल को सामान्य बनाने के लिए** डिग्री के भीतर कौशल को शामिल करना।
- **उद्योग को कौशल कार्यक्रमों का सह-मालिक बनाएं**, न कि केवल एक उपभोक्ता बनाएं।
- **एसएससी की** विश्वसनीयता को रोजगार और प्लेसमेंट परिणामों से जोड़कर सुधार करें।
- **शिक्षा और रोजगार के बीच एक सेतु के रूप में** अप्रेंटिसशिप को बढ़ाना।

निष्कर्ष

भारत का कौशल पारिस्थितिकी तंत्र एक विरोधाभास को दर्शाता है: बिना किसी प्रभाव के बड़े पैमाने पर। मुख्य समस्या नीतिगत इरादे या बजटीय समर्थन में नहीं है, बल्कि खंडित जवाबदेही और कमजोर श्रम-बाजार संरेखण में है। जब तक कौशल को शिक्षा में शामिल नहीं किया जाता है, उद्योग को सार्थक रूप से एकीकृत नहीं किया जाता है, और क्षेत्र कौशल परिषदों को परिणामों के लिए जवाबदेह नहीं ठहराया जाता है, तब तक कौशल आर्थिक परिवर्तन के चालक के बजाय एक कल्याण-उन्मुख हस्तक्षेप बना रहेगा। उत्पादकता, श्रम की गरिमा और निरंतर विकास के स्तंभ के रूप में कौशल की फिर से कल्पना करना भारत की जनसांख्यिकीय क्षमता को टिकाऊ राष्ट्रीय समृद्धि में बदलने के लिए आवश्यक है।

दैनिक समाचार विश्लेषण

UPSC प्रारम्भिक परीक्षा अभ्यास प्रश्न

प्रश्न: निम्नलिखित में से कौन सा भारत के सार्वजनिक कौशल प्रमाणपत्रों से प्रभावी उद्योग-आधारित प्रमाणपत्रों (जैसे, वैश्विक तकनीकी प्रमाणन) को सबसे अच्छा अलग करता है?

(a) मजबूत नियोक्ता विश्वास और श्रेणीबद्ध योग्यता संकेत

(b) बाइनरी पास-फेल मूल्यांकन

(c) सरकार का समर्थन

(d) प्रमाणन की कम लागत

उत्तर : a)

UPSC मुख्य परीक्षा अभ्यास प्रश्न

प्रश्न: बड़े सार्वजनिक निवेश के बावजूद, कौशल भारतीय युवाओं के लिए एक आकांक्षात्मक मार्ग के रूप में उभरा नहीं है। इस विफलता के पीछे संरचनात्मक और संस्थागत कारणों का विश्लेषण करें। **(150 शब्द)**

पेज 11 : सामान्य अध्ययन II : सामाजिक न्याय/प्रारंभिक परीक्षा

भारत की सार्वजनिक स्वास्थ्य प्रणाली एक बहुआयामी संकट का सामना कर रही है, जो पुरानी अंडरफंडिंग, तेजी से निजीकरण, नियामक विफलताओं और गहरी सामाजिक असमानताओं से चिह्नित है। स्वास्थ्य कर्मियों के लिए अनैतिक चिकित्सा पद्धतियों, बढ़ती बीमारी के बोझ और बिगड़ती कामकाजी परिस्थितियों की आवर्तक रिपोर्टें अलग-अलग विफलताओं के बजाय प्रणालीगत कमजोरियों की ओर इशारा करती हैं।

- यह बहस सामाजिक न्याय के प्रति भारत की संवैधानिक प्रतिबद्धता और सार्वजनिक स्वास्थ्य को राज्य की मुख्य जिम्मेदारी के रूप में रखने वाले निर्देशक सिद्धांतों के संदर्भ में महत्वपूर्ण है। लेख एक महत्वपूर्ण लेकिन अक्सर अनदेखा किए जाने वाले आयाम को सामने रखता है: डॉक्टरों की भूमिका न केवल देखभाल प्रदाताओं के रूप में, बल्कि सामाजिक और नीतिगत परिवर्तन के एजेंट के रूप में।

भारत की सार्वजनिक स्वास्थ्य प्रणाली में संरचनात्मक समस्याएं

1. **क्रोनिक अंडरफंडिंग और कमजोर सार्वजनिक बुनियादी ढांचा**
    - भारत में सार्वजनिक स्वास्थ्य व्यय इसकी जनसंख्या के आकार और बीमारी के बोझ की तुलना में कम है।
    - भीड़भाड़ वाले सार्वजनिक अस्पताल, दवाओं की कमी और अपर्याप्त प्राथमिक स्वास्थ्य सेवा नागरिकों को निजी प्रदाताओं की ओर धकेल रही है।
2. **स्वास्थ्य सेवा का निजीकरण और बाजारीकरण**
    - स्वास्थ्य सेवा में निजी इक्विटी के बढ़ते प्रभुत्व ने चिकित्सा देखभाल को लाभ-संचालित क्षेत्र में बदल दिया है।
    - आयुष्मान भारत प्रधानमंत्री जन आरोग्य योजना (एबी पीएमजेएवाई) जैसी योजनाओं और व्यापक सार्वजनिक-निजी भागीदारी के कारण निजी अस्पतालों में पर्याप्त सार्वजनिक धन का प्रवाह हुआ है, जो अक्सर सार्वजनिक सुविधाओं को मजबूत नहीं करता है।
    - निजी सेटिंग्स में डॉक्टरों को राजस्व लक्ष्यों का सामना करना पड़ता है, नैदानिक निर्णय लेने को प्रभावित करता है और विश्वास को नष्ट करता है।
3. **चिकित्सा शिक्षा पर प्रभाव**
    - निजी मेडिकल कॉलेजों में उच्च शुल्क (अक्सर ₹40 लाख से अधिक) ने चिकित्सा शिक्षा का व्यवसायीकरण कर दिया है।
    - नैदानिक तर्क और सामुदायिक स्वास्थ्य के बजाय एमसीक्यू पर जोर देने के साथ प्रशिक्षण परीक्षा-केंद्रित हो गया है।
    - यह स्वास्थ्य और सार्वजनिक सेवा के सामाजिक निर्धारकों के साथ जुड़ाव को हतोत्साहित करता है।

सामाजिक निर्धारक और नीति विफलता

अल्ट्रा-प्रोसेस्ड खाद्य खपत, लगातार वायु और जल प्रदूषण, जलवायु परिवर्तन और असुरक्षित बुनियादी ढांचे के कारण बढ़ते गैर-संचारी रोग स्वास्थ्य क्षेत्र से परे नीतिगत अंतराल को दर्शाते हैं। रोग पैटर्न तेजी से असमानता को प्रतिबिंबित करते हैं, वर्ग, जाति, लिंग और भूगोल

देखभाल और स्वास्थ्य परिणामों तक पहुंच निर्धारित करते हैं। दशकों के कार्यक्रमों के बावजूद, तपेदिक, एनीमिया, सड़क यातायात की चोटें और गुर्दे की पुरानी बीमारी व्यापक बनी हुई है, जो शक्तिशाली व्यावसायिक हितों द्वारा कमजोर कार्यान्वयन और नियामक कब्जे को रेखांकित करती है।

सामाजिक परिवर्तन के एजेंट के रूप में डॉक्टर

लेख डॉक्टरों को एक व्यापक नैतिक और राजनीतिक ढांचे के भीतर रखता है:

- चिकित्सक नीतिगत विफलताओं के मानव पीड़ा में प्रत्यक्ष अनुवाद देखते हैं, जिससे उन्हें नैतिक अधिकार और सामाजिक विश्वसनीयता मिलती है।
- ऐतिहासिक रूप से, डॉक्टरों ने सुधारकों और राजनीतिक अभिनेताओं के रूप में काम किया है:
    - रुडोल्फ विर्चो ने चिकित्सा को एक सामाजिक विज्ञान के रूप में अवधारणा दी और तर्क दिया कि बीमारी राजनीतिक और सामाजिक संरचनाओं में निहित है।
    - परमाणु युद्ध की रोकथाम के लिए अंतर्राष्ट्रीय चिकित्सकों ने परमाणु प्रसार को सार्वजनिक स्वास्थ्य खतरे के रूप में फिर से तैयार किया।
    - भारत में, मुथुलक्ष्मी रेड्डी ने लैंगिक न्याय और सामाजिक सुधार को आगे बढ़ाने के लिए चिकित्सा अधिकार का उपयोग किया।

ये उदाहरण इस बात को रेखांकित करते हैं कि अन्याय के सामने तटस्थता चिकित्सा नैतिकता के साथ असंगत है।

जवाबदेही और शासन अंतराल

भारत का स्वास्थ्य संकट एक अतिप्रवाह प्रणाली जैसा दिखता है, जहां अपस्ट्रीम कारणों को संबोधित करने के बजाय रोग के परिणामों के प्रबंधन पर ध्यान केंद्रित किया जाता है। निजीकरण, अपर्याप्त विनियमन, और निवारक सार्वजनिक स्वास्थ्य अधिनियम की उपेक्षा प्रणाली में "लीक" के रूप में कार्य करती है। डॉक्टर, नीतिगत विकल्पों पर सवाल उठाकर - जैसे कि तंबाकू को बढ़ावा देना, खराब सड़क सुरक्षा प्रवर्तन, या कमजोर प्रदूषण नियंत्रण - सार्वजनिक प्रवचन को रोगसूचक उपचार से संरचनात्मक सुधार में स्थानांतरित कर सकते हैं।

निष्कर्ष

भारत की सार्वजनिक स्वास्थ्य चुनौतियाँ चिकित्सा ज्ञान की कमी से कम और नीतिगत उपेक्षा, असमान शासन और अनियंत्रित व्यावसायीकरण से अधिक उत्पन्न होती हैं। जबकि बढ़ी हुई फंडिंग और मजबूत विनियमन आवश्यक हैं, परिवर्तनकारी परिवर्तन के लिए नैतिक और संस्थागत जवाबदेही की भी आवश्यकता होती है। डॉक्टर, अपने सामाजिक विश्वास और पीड़ा से निकटता को देखते हुए, सार्वजनिक नीति के साथ नैदानिक वास्तविकताओं को पाटने के लिए विशिष्ट रूप से तैनात हैं। चिकित्सकों को न केवल चिकित्सकों के रूप में बल्कि सामाजिक न्याय के अधिवक्ताओं के रूप में फिर से कल्पना करना भारत में एक लचीली, न्यायसंगत और जन-केंद्रित सार्वजनिक स्वास्थ्य प्रणाली के पुनर्निर्माण के लिए महत्वपूर्ण है।

UPSC प्रारम्भिक परीक्षा अभ्यास प्रश्न

प्रश्न: निम्नलिखित युग्मों पर विचार करें:

समस्या	संबद्ध परिणाम
1. अल्ट्रा-प्रोसेस्ड खाद्य खपत	गैर-संचारी रोगों में वृद्धि
2. वायु और जल प्रदूषण	बीमारी का बोझ बढ़ गया
3. जलवायु परिवर्तन	सार्वजनिक स्वास्थ्य प्रणालियों पर दबाव कम

उपर्युक्त युग्मों में से कौन-सा/से सही सुमेलित है/हैं?

(a) केवल 1

(b) केवल 1 और 2

(c) केवल 2 और 3

(d) 1, 2 और 3

उत्तर: b)

UPSC मुख्य परीक्षा अभ्यास प्रश्न

प्रश्न: भारत की सार्वजनिक स्वास्थ्य सेवा प्रणाली पर निजीकरण के प्रभाव का मूल्यांकन करें, जिसमें इक्विटी, पहुंच और देखभाल की गुणवत्ता के विशेष संदर्भ में शामिल हैं। **(150 शब्द)**

जैसे-जैसे वैश्विक अर्थव्यवस्था निम्न-कार्बन और चक्रीय उत्पादन प्रणालियों की ओर बढ़ रही है, बायोमैटिरियल्स सामग्री विज्ञान और औद्योगिक नीति में एक महत्वपूर्ण सीमा के रूप में उभर रहे हैं। पूरी तरह से या आंशिक रूप से जैविक स्रोतों से व्युत्पन्न, बायोमटेरियल्स जीवाश्म-आधारित प्लास्टिक, रसायनों और वस्त्रों का विकल्प प्रदान करते हैं। भारत के लिए, जो पर्यावरणीय क्षरण और पेट्रोकेमिकल सामग्री पर उच्च आयात निर्भरता की दोहरी चुनौती का सामना कर रहा है, बायोमैटिरियल्स स्थिरता, औद्योगिक विकास, किसान कल्याण और रणनीतिक स्वायत्तता को संरेखित करने का अवसर प्रदान करता है। लेख इस बात पर प्रकाश डालता है कि बायोमटेरियल्स भारत की हरित विनिर्माण महत्वाकांक्षाओं के लिए तेजी से क्यों केंद्र में हैं।

What are biomaterials and how do they work?

How can indigenous biomaterials reduce dependence on fossil-based imports?

Shambhavi Naik

The story so far:
As countries look to shift to cleaner processes to manufacture consumer products, be it plastics or textiles, biomaterials will become the new frontier of materials engineering.

What are biomaterials?
Biomaterials are materials derived wholly or partly from biological sources, or engineered using biological processes, that are designed to replace or interact with conventional materials. They are increasingly used across sectors such as packaging, textiles, construction, and healthcare. Biomaterials can be broadly categorised into three types: drop-in biomaterials, which are chemically identical to petroleum-based materials and can be used in existing manufacturing systems (such as bio-PET); drop-out biomaterials, which are chemically different and require new processing or end-of-life systems (such as polylactic acid or PLA); and novel biomaterials, which offer new properties not found in conventional materials, such as self-healing materials, bioactive implants, and advanced composites.

Why does India need biomaterials?
For India, biomaterials address multiple goals, including environmental sustainability, industrial growth, revenue generation, and supporting farmer livelihoods through a single pathway. Indigenous biomaterials biomanufacturing can reduce India's heavy dependence on fossil-based imports for plastics, chemicals, and materials. It would also enable diversified value for agricultural feedstocks and residues, offering farmers new income streams beyond food markets. As global regulations and consumer preferences shift toward low-carbon and circular products, biomaterials position the Indian industry to remain competitive in export markets. Biomaterials also support domestic policy goals around waste reduction, such as the ban on single-use plastics and climate action goals.

Where does India stand today?
India's biomaterials sector, spanning bioplastics, biopolymers, and bio-derived materials, is rapidly emerging as a strategic industrial and sustainability opportunity, with the bioplastics market alone valued at around $500 million in 2024 and forecast to grow strongly through the decade. Balrampur Chini Mills planned PLA plant investment in Uttar Pradesh is one of the biggest investments in India. Domestic innovation includes startups like Phool.co, converting temple flower waste into biomaterials and Praj Industries, who have their own demonstration-level bioplastics plant in progress. Although India has a rich agricultural base, in some sectors, there is foreign dependence for the technologies required for the transformation of feedstocks into market-ready final products.

What is the way forward?
India has an advantage in building a biomaterials industry, but some issues would need to be addressed first. If feedstocks also do not scale with increased demand, there could be feedstock competition with food sources. Similarly, aggressive agricultural practices could lead to water stress and soil deterioration. Further, weak waste-management and composting infrastructure could undermine environmental benefits. Fragmented policy coordination across agriculture, environment, and industry may slow adoption, and failure to move quickly could leave India dependent on imports as other countries scale faster.

To capitalise on this sector, policy actions include scaling biomanufacturing infrastructure (especially fermentation and polymerisation capacity), improving feedstock productivity for crops such as sugarcane, maize, and agricultural residues using emerging technologies, and investing in R&D and standards to develop both drop-in and novel biomaterials.

Clear regulatory definitions, labelling norms, and end-of-life pathways (recycling or industrial composting) are essential to build consumer and industry confidence.

Government procurement, time-bound incentives under frameworks, and support for pilot plants and shared facilities can help de-risk early investments.

Shambhavi Naik is chairperson, Takshashila Institution's Health & Life Sciences Policy

THE GIST

- Biomaterials derived from biological sources are increasingly used across sectors and can reduce dependence on fossil-based imports while supporting environmental sustainability, industrial growth, and farmer livelihoods.
- India's biomaterials sector is emerging as a strategic opportunity, but scaling biomanufacturing infrastructure, feedstocks, waste-management systems, and policy coordination is essential to remain competitive as other countries scale faster.

बायोमैटिरियल्स क्या हैं और वे कैसे काम करते हैं?

बायोमटेरियल्स जैविक फीडस्टॉक्स (जैसे फसलों, अवशेषों, या अपशिष्ट) या जैविक प्रक्रियाओं (जैसे किण्वन) का उपयोग करके उत्पादित सामग्री हैं। उन्हें तीन व्यापक श्रेणियों में वर्गीकृत किया जा सकता है:

1. **ड्रॉप-इन बायोमैटिरियल्स**
    - रासायनिक रूप से पेट्रोलियम-आधारित सामग्री के समान और मौजूदा बुनियादी ढांचे के साथ संगत।
    - उदाहरण: पैकेजिंग में उपयोग किया जाने वाला बायो-पीईटी।
2. **ड्रॉप-आउट बायोमटेरियल्स**
    - रासायनिक रूप से विशिष्ट सामग्री के लिए नए प्रसंस्करण या जीवन के अंत की प्रणाली की आवश्यकता होती है।
    - उदाहरण: पॉलीलैक्टिक एसिड (पीएलए), जो औद्योगिक परिस्थितियों में बायोडिग्रेडेबल और कंपोस्टेबल है।

3. **उपन्यास बायोमटेरियल्स**
    - स्व-उपचार गुणों, जैव-सक्रिय व्यवहार, या उन्नत कंपोजिट जैसी नई कार्यात्मकताओं वाली सामग्री, विशेष रूप से स्वास्थ्य देखभाल और उच्च-मूल्य विनिर्माण के लिए प्रासंगिक।

ये सामग्रियां जैविक कार्बन को टिकाऊ उत्पादों में परिवर्तित करके कार्य करती हैं, जिससे जीवनचक्र उत्सर्जन और जीवाश्म ईंधन के उपयोग में कमी आती है।

भारत के लिए बायोमैटिरियल्स क्यों मायने रखते हैं?

1. **आयात निर्भरता को कम करना**
    - भारत जीवाश्म आधारित प्लास्टिक, पॉलिमर और रसायनों का एक महत्वपूर्ण हिस्सा आयात करता है।
    - स्वदेशी बायोमटेरियल्स इन आयातों को प्रतिस्थापित कर सकते हैं, आर्थिक लचीलेपन को मजबूत कर सकते हैं और आत्मनिर्भर भारत के साथ जुड़ सकते हैं।
2. **किसान आय विविधीकरण**
    - कृषि अवशेष, गन्ना, मक्का और गैर-खाद्य बायोमास औद्योगिक फीडस्टॉक बन सकते हैं, जो किसानों को खाद्य बाजारों से परे आय प्रदान करते हैं।
3. **निर्यात प्रतिस्पर्धात्मकता**
    - जैसा कि वैश्विक बाजार कार्बन मानकों और स्थिरता मानदंडों को लागू करते हैं, बायोमैटिरियल्स भारतीय उद्योग को प्रतिस्पर्धी बने रहने में मदद करते हैं।
4. **पर्यावरण और जलवायु लक्ष्य**
    - एकल-उपयोग प्लास्टिक पर प्रतिबंध, अपशिष्ट में कमी, और जीवनचक्र उत्सर्जन को कम करके भारत की जलवायु प्रतिबद्धताओं का समर्थन करता है।

भारत की वर्तमान स्थिति

भारत का बायोमैटेरियल्स इकोसिस्टम एक प्रारंभिक लेकिन आशाजनक चरण में है:

- 2024 में बायोप्लास्टिक बाजार का मूल्य लगभग 500 मिलियन डॉलर था और इसके तेजी से बढ़ने की उम्मीद है।
- प्रमुख निवेशों में उत्तर प्रदेश में बलरामपुर चीनी मिल्स द्वारा नियोजित पीएलए विनिर्माण संयंत्र शामिल है।
- Phool.co जैसे स्टार्ट-अप मंदिर के फूलों के कचरे को उच्च मूल्य वाले बायोमैटेरियल्स में परिवर्तित कर रहे हैं।
- प्राज इंडस्ट्रीज जैसी कंपनियां स्वदेशी बायोप्लास्टिक प्रौद्योगिकियों का विकास कर रही हैं।

हालांकि, भारत अभी भी कुछ उच्च-अंत रूपांतरण प्रक्रियाओं में विदेशी प्रौद्योगिकियों पर निर्भर करता है, जिससे घरेलू मूल्य कैप्चर सीमित हो जाता है।

चुनौतियाँ और नीतिगत अंतराल

- **फीडस्टॉक प्रतियोगिता**: बड़े पैमाने पर मांग खाद्य फसलों के साथ प्रतिस्पर्धा कर सकती है यदि सावधानी से प्रबंधित नहीं किया जाता है।
- **पर्यावरण व्यापार**: गहन कृषि से जल तनाव और मिट्टी का क्षरण खराब हो सकता है।
- **बुनियादी ढांचे की कमी**: कमजोर खाद, पुनर्चक्रण और अपशिष्ट-पृथक्करण प्रणालियाँ पर्यावरणीय लाभ को नकार सकती हैं।
- **खंडित शासन**: कृषि, पर्यावरण और उद्योग मंत्रालयों में खराब समन्वय अपनाने की गति को धीमा कर देता है।
- **वैश्विक प्रतिस्पर्धा**: स्केलिंग में देरी भारत को भविष्य में आयात निर्भरता में बंद कर सकती है क्योंकि अन्य देश तेजी से आगे बढ़ रहे हैं।

आगे की राह

बायोमैटिरियल्स की पूरी क्षमता का उपयोग करने के लिए, भारत को यह करना होगा:

- स्केल बायोमैन्युफैक्चरिंग इंफ्रास्ट्रक्चर, विशेष रूप से किण्वन और पोलीमराइजेशन क्षमता।
- सटीक कृषि और जैव प्रौद्योगिकी का उपयोग करके फीडस्टॉक उत्पादकता में सुधार करें।
- ड्रॉप-इन और उपन्यास बायोमैटिरियल्स दोनों के लिए अनुसंधान एवं विकास, मानकों और प्रमाणन में निवेश करें।
- स्पष्ट नियामक परिभाषाएँ, लेबलिंग मानदंड और जीवन के अंत के रास्ते स्थापित करें।
- शुरुआती निवेश को जोखिम से मुक्त करने के लिए सरकारी खरीद, लक्षित प्रोत्साहन और साझा पायलट सुविधाओं का उपयोग करें।

निष्कर्ष

बायोमैटिरियल्स जलवायु कार्रवाई, औद्योगिक रणनीति और ग्रामीण आर्थिक परिवर्तन के अभिसरण का प्रतिनिधित्व करते हैं। भारत के लिए, वे जीवाश्म-ईंधन निर्भरता को कम करने, कृषि के लिए नई मूल्य श्रृंखला बनाने और कम कार्बन वाली वैश्विक अर्थव्यवस्था के लिए घरेलू उद्योग को स्थापित करने के लिए एक मार्ग प्रदान करते हैं। हालांकि, सफलता समय पर नीति समन्वय, बुनियादी ढांचे के निर्माण और तकनीकी आत्मनिर्भरता पर निर्भर करेगी। यदि रणनीतिक रूप से अपनाया जाता है, तो बायोमैटिरियल्स तेजी से विकसित हो रहे वैश्विक सामग्री परिदृश्य में एक अवसर को चूकने के बजाय भारत के टिकाऊ विनिर्माण भविष्य की आधारशिला बन सकता है।

दैनिक समाचार विश्लेषण

UPSC प्रारम्भिक परीक्षा अभ्यास प्रश्न

प्रश्न : टिकाऊ विनिर्माण के संदर्भ में, "ड्रॉप-इन बायोमटेरियल्स" शब्द उन सामग्रियों को संदर्भित करता है जो:

(a) सभी प्राकृतिक परिस्थितियों में बायोडिग्रेडेबल हैं

(b) पूरी तरह से नए औद्योगिक बुनियादी ढांचे की आवश्यकता है

(c) रासायनिक रूप से पारंपरिक जीवाश्म-आधारित सामग्रियों के समान हैं

(d) केवल चिकित्सा अनुप्रयोगों में उपयोग किया जाता है

उत्तर: (c)

UPSC मुख्य परीक्षा अभ्यास प्रश्न

प्रश्न: बायोमैटिरियल्स जलवायु कार्रवाई, औद्योगिक नीति और कृषि परिवर्तन के अभिसरण का प्रतिनिधित्व करते हैं। भारतीय संदर्भ में चर्चा कीजिए। **(150 शब्द)**

THE HINDU
INDIA'S NATIONAL NEWSPAPER SINCE 1878

दैनिक समाचार विश्लेषण

पेज : 08 : संपादकीय विश्लेषण

The right to disconnect in an 'always-on' economy

Shashi Tharoor

is the fourth-term Member of Parliament (Congress) for Thiruvananthapuram (Lok Sabha), an award-winning author, a former Minister of State for Human Resources Development and a former Chairman of the Parliamentary Standing Committee on Information Technology

In the digital age, our greatest tools of productivity – the smartphone, the laptop, the instantaneous email – have become our silent, 24X7 taskmasters. They have eroded the vital boundary between professional life and personal well-being, turning evenings, weekends, and even holidays, into extensions of the workday. This culture of constant availability is not a badge of dedication; it is a creeping sickness, and its diagnosis is writ large across the face of the Indian workforce. The time has come for India to officially legislate a fundamental right for its citizens: the right to disconnect.

As the proposer of a Private Member's Bill advocating this very measure, I believe that this is not merely a piece of progressive labour reform. It is a national imperative for public health, long-term economic productivity, and social stability. We cannot achieve our aspirations as a global power if our most valuable resource – our people – are quietly burning out.

An unsustainable pace of work in India

The data paint a grim picture. According to the International Labour Organization (ILO), a staggering 51% of India's workforce works more than 49 hours per week, placing the country second globally for extended working hours. This is an unsustainable pace. The human cost of this relentless cycle is even more alarming: 78% of employees in India report experiencing job burnout, leading inevitably to physical and emotional exhaustion.

This crisis of perpetual availability is not a matter of feeling fatigued; it translates directly into severe health conditions. The lack of a proper work-life balance contributes significantly to lifestyle diseases such as hypertension, diabetes, anxiety and depression. These are not just individual tragedies; they are a societal burden that drains our health-care system and severely impairs organisational productivity. A fatigued worker is less creative, more prone to error, and, ultimately, less productive. The current emphasis on measuring work by sheer duration over quality is archaic and self-defeating. The tragic death of Anna Sebastian Perayil (the healthy young E&Y employee who literally died of overwork in 2024) was a warning for the entire workforce. Furthermore, work-related stress, often fuelled by the expectation of 24X7 digital availability, is a significant contributor to the burgeoning national mental health crisis, accounting for 10%-12% of cases, as per the National Mental Health Survey. To ignore this silent epidemic is to wilfully neglect the well-being of the nation.

India's current legal framework, despite recent attempts, remains insufficient to protect the average worker in the hyper-connected, modern economy. The Occupational Safety, Health, and Working Conditions Code, 2020, sets a maximum limit on working hours for traditional "workers", but critically, it often fails to extend the same protection to all "employees", particularly contractual, freelance, and gig workers. This gap leaves a large portion of India's young, digitally-native, and highly vulnerable workforce exposed to exploitative working hours, without adequate safeguards. In a system where employees fear disciplinary action or termination simply for failing to answer a late night email, the power dynamic is inherently skewed towards the employer.

India's legal framework is still weak and insufficient in protecting the average worker in the hyper-connected and modern economy

A global issue

My proposed Bill aims to correct this foundational flaw. It is crucial that the Code is amended to clearly define and limit working hours for all employees. It seeks to enshrine the "right to disconnect" in law, ensuring two core protections: first, employees cannot be penalised, disciplined, or discriminated against for refusing to respond to work-related communication beyond their specified working hours. Second, a mechanism must be established to address and resolve grievances when the rights of workers are infringed upon. Both are fundamentally about restoring dignity and ensuring that the right to recharge is respected, allowing individuals to maintain their physical and mental well-being without fear of professional repercussions.

India is not alone in grappling with the challenges of the 'always-on' economy. This is a global issue demanding a legislative response. Countries across the world have already recognised this necessity, setting a clear precedent that we must now follow. France, a pioneer in this area, introduced the "right to disconnect" as far back as 2017. Since then, Portugal, Italy, Ireland, and Australia have followed suit, embedding similar protections into their labour codes.

These laws mandate that companies negotiate specific protocols to limit after-hours digital communication. This is a clear signal that the most developed economies understand that respecting downtime is not an impediment to economic growth, but a precondition for sustainable growth. We must shed the myth that the world will stop turning if an email is answered the next morning.

The law, however, is merely a framework. The "right to disconnect" is defined as the employee being no longer compelled to remain available beyond their regular working hours, thereby blurring the lines between their personal and professional lives and exacerbating stress and burnout. The legislation provides the shield, but we must also wield the sword of cultural change.

The legislative momentum behind the right to disconnect confirms its urgency, with pioneering States such as Kerala already introducing their own legislation for the local private sector. While these State-level initiatives are commendable steps, the complexity and national scale of the 'always-on' crisis demand a uniform, central amendment to secure this protection for every Indian worker. My proposed Bill, by amending the Occupational Safety, Health and Working Conditions Code (2020), ensures that this right is foundational across all States and, critically, extends protection to the vulnerable contractual and gig workforce often left out by current definitions. This national approach embeds the right to disconnect as an essential pillar of occupational safety, including mandated mental health support, transforming it from a simple prohibition on employer action into a holistic mandate for employee well-being.

Other interconnected steps to take

Still, laws alone are insufficient to facilitate meaningful transformation. For any legislation to be effective, it must be supported by comprehensive awareness programmes, advocacy and sensitisation workshops for both employees and management. It is especially important to address the organisational norms that perpetuate toxic work cultures – those where "presenteeism" is valued over actual output, and where the late night email is seen as a proxy for commitment. The provisions for proactive mental health support services, including counselling and psychological support for workers, must, therefore, become integral to the new workplace ethos.

The right to disconnect is an investment. It is an acknowledgment that well-rested minds are sharper, more innovative and more committed in the long run. By allowing employees to genuinely recharge and recover, we are not simply reducing working hours. We are dramatically enhancing the quality of those hours spent on the job.

Incorporating legal protections for a work-life balance – the right to disconnect and limiting working hours – will forge a holistic and vigorous approach toward improving the workplace environment in India. By focusing on the well-being of our employees, both their physical and mental health will improve, creating a more sustainable and, ultimately, more productive workforce for the future of India.

The choice before us is clear: to continue down the path of burnout, risking the health and potential of our young demographic dividend, or to embrace this reform, liberating our workforce and proving that India's economy is built not just on speed, but on the strength and sustainability of its people. I urge the government to implement this necessary step towards a healthier, happier, and more productive nation.

जीएस पेपर III: भारतीय अर्थव्यवस्था

UPSC Mains Exam Practice Question : अत्यधिक काम के घंटे और डिजिटल बर्नआउट दीर्घकालिक आर्थिक उत्पादकता को कमजोर करते हैं। भारत के जनसांख्यिकीय लाभांश के संदर्भ में चर्चा कीजिए। **(150 शब्द)**

संदर्भ :

काम के तेजी से डिजिटलीकरण ने दुनिया भर में रोजगार संबंधों को मौलिक रूप से बदल दिया है। स्मार्टफोन, ईमेल और रिमोट-वर्किंग टूल ने पेशेवर और व्यक्तिगत जीवन के बीच की सीमा को भंग कर दिया है, जिससे "हमेशा-चालू" कार्य संस्कृति को जन्म मिला है। इस संदर्भ में शशि थरूर ने प्राइवेट मेंबर बिल के जरिए भारतीय कामगारों को अलग करने का वैधानिक अधिकार देने की वकालत की है। यह प्रस्ताव इस मुद्दे को न केवल श्रम सुधार के रूप में तैयार करता है, बल्कि सार्वजनिक स्वास्थ्य, उत्पादकता और सामाजिक न्याय की अनिवार्यता के रूप में भी तैयार करता है, जो विशेष रूप से भारत के युवा और डिजिटल रूप से निर्भर कार्यबल के लिए प्रासंगिक है।

समस्या: भारत की अस्थिर कार्य संस्कृति

- अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के अनुसार, भारत का लगभग 51% कार्यबल सप्ताह में 49 घंटे से अधिक काम करता है, जिससे भारत वैश्विक स्तर पर सबसे लंबे समय तक काम करने वाले देशों में शामिल हो जाता है।
- उच्च कार्य तीव्रता और निरंतर डिजिटल उपलब्धता ने व्यापक बर्नआउट, मानसिक तनाव और उच्च रक्तचाप, मधुमेह, चिंता और अवसाद जैसी जीवनशैली संबंधी बीमारियों में योगदान दिया है।
- राष्ट्रीय मानसिक स्वास्थ्य सर्वेक्षण इंगित करता है कि काम से संबंधित तनाव भारत के बढ़ते मानसिक स्वास्थ्य बोझ में महत्वपूर्ण योगदान देता है।
- 2024 में अधिक काम के कारण एक युवा कॉर्पोरेट कर्मचारी की दुखद मौत ने अनियंत्रित कार्यस्थल तनाव की मानवीय लागत को उजागर किया।

यह संस्कृति उत्पादकता और काम की गुणवत्ता पर प्रस्तुतवाद (लंबे समय तक और निरंतर उपलब्धता) को प्राथमिकता देती है, जिससे दक्षता में गिरावट और दीर्घकालिक आर्थिक नुकसान होता है।

भारत के कानूनी ढांचे में कमियां

- व्यावसायिक सुरक्षा, स्वास्थ्य और कार्य स्थिति संहिता, 2020 काम के घंटों की सीमा निर्धारित करती है, लेकिन मुख्य रूप से "श्रमिकों" पर केंद्रित है, जिससे कई "कर्मचारियों" - विशेष रूप से अनुबंधित, फ्रीलांस और गिग श्रमिकों को प्रभावी सुरक्षा से बाहर छोड़ दिया गया है।
- डिजिटल रूप से मध्यस्थता वाली नौकरियों में, नियोक्ता और कर्मचारी के बीच शक्ति विषमता श्रमिकों को दंड या नौकरी खोने के डर से कार्यालय के समय से परे उपलब्ध रहने के लिए मजबूर करती है।
- यह कानूनी अंतर युवा, शहरी, सफेदपोश और गिग-इकोनॉमी श्रमिकों को असमान रूप से प्रभावित करता है।

प्रस्तावित 'डिस्कनेक्ट करने का अधिकार'

प्रस्तावित विधेयक मौजूदा श्रम कानून में निम्नलिखित के लिए संशोधन करने का प्रयास करता है:

1. निर्धारित कार्य घंटों के बाहर काम से संबंधित संचार का जवाब देने से इनकार करने के लिए कर्मचारियों को दंड से बचाएं।
2. इस अधिकार के उल्लंघन के लिए शिकायत निवारण तंत्र बनाएं।
3. संविदात्मक और गिग श्रमिकों सहित सभी कर्मचारियों को कवरेज प्रदान करें।

व्यावसायिक सुरक्षा के भीतर डिस्कनेक्ट करने के अधिकार को एम्बेड करके, प्रस्ताव मानसिक स्वास्थ्य और आराम को वैकल्पिक लाभों के बजाय कार्यस्थल की भलाई के अभिन्न अंग के रूप में मानता है।

वैश्विक अनुभव और सर्वोत्तम अभ्यास

भारत की बहस वैश्विक रुझानों को प्रतिबिंबित करती है। कई देशों ने पहले ही डिस्कनेक्ट करने का अधिकार बना दिया है:

- फ्रांस (2017) ने कानून का बीड़ा उठाया, जिसमें कंपनियों को घंटों के बाद संचार मानदंडों को परिभाषित करने की आवश्यकता थी।
- पुर्तगाल, इटली, आयरलैंड और ऑस्ट्रेलिया ने इसी तरह की सुरक्षा का पालन किया है।

इन अनुभवों से पता चलता है कि कर्मचारी डाउनटाइम का सम्मान करने से प्रतिस्पर्धा को नुकसान नहीं होता है; बल्कि, यह टिकाऊ उत्पादकता और नवाचार का समर्थन करता है।

संघीय और नीति आयाम

- केरल जैसे राज्यों ने निजी क्षेत्र में काम के बाद के काम को विनियमित करने की दिशा में कदम उठाए हैं।
- हालांकि, डिजिटल श्रम बाजारों के राष्ट्रीय स्तर को देखते हुए, राज्यों में निरंतर सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए एक समान केंद्रीय ढांचा आवश्यक है।
- कार्यस्थल संस्कृति को बदलने के लिए कानून से परे, जागरूकता कार्यक्रम, संगठनात्मक सुधार और मानसिक स्वास्थ्य सहायता प्रणाली आवश्यक हैं।

निष्कर्ष

डिस्कनेक्ट करने के वैधानिक अधिकार की मांग डिजिटल युग में विकास और उत्पादकता के गहन पुनर्विचार को दर्शाती है। भारत के जनसांख्यिकीय लाभांश को बर्नआउट, तनाव और घटते कल्याण की नींव पर बनाए नहीं रखा जा सकता है। कानूनी रूप से डिस्कनेक्ट करने के अधिकार को मान्यता देकर, भारत इस बात की पुष्टि करेगा कि आर्थिक विकास मानवीय, सम्मानजनक और टिकाऊ कार्य प्रथाओं पर निर्भर होना चाहिए।

राइट टू डिस्कनेक्ट बिल, 2025

- एक निजी सदस्य विधेयक, जिसका शीर्षक से राइट टू डिस्कनेक्ट विधेयक, 2025 लोकसभा में पेश किया गया।
- उद्देश्य: कार्यालय के समय के बाद कर्मचारियों को काम से संबंधित मांगों से बचाना और कार्य-जीवन संतुलन को बढ़ावा देना।

प्रमुख प्रावधान

- कर्मचारी कल्याण प्राधिकरण की स्थापना का प्रस्ताव किया:
    - डिस्कनेक्ट करने का अधिकार लागू करें
    - काम की स्थिति पर आधारभूत अध्ययन का संचालन करें
    - 10 से अधिक कर्मचारियों वाली कंपनियों में घंटों के बाद काम करने के लिए नियमों पर बातचीत करें

- काम के घंटों के बाद काम के कॉल/संदेशों का जवाब देने से इनकार करने के लिए कर्मचारियों को दंडित नहीं किया जा सकता है।
- यदि नियोक्ता निश्चित घंटों से परे काम सौंपते हैं, तो उन्हें ओवरटाइम मजदूरी का भुगतान करना होगा।
- परामर्श सेवाओं और डिजिटल डिटॉक्स केंद्रों को संबोधित करने के लिए प्रदान करता है:
    - टेलीप्रेशर
    - काम से संबंधित तनाव
    - सूचना अधिभार ("जानकारी-मोटापा")

तुलनात्मक अंतर्राष्ट्रीय अभ्यास

- **यूरोपीय संघ:** नियोक्ता नियंत्रण यह निर्धारित करता है कि ऑन-कॉल और स्टैंडबाय समय सहित काम के रूप में क्या योग्य है।
- **फ्रांस:** काम के समय और आराम के समय के बीच स्पष्ट सीमांकन; सामूहिक सौदेबाजी के माध्यम से डिजिटल संचार विनियमित।
- **जर्मनी:** काम के घंटे की सीमा और आराम की अवधि का सख्त प्रवर्तन।
- ये सिस्टम भारत के विपरीत, कामकाजी समय के विनियमन के भीतर डिजिटल संचार को एम्बेड करते हैं।

संवैधानिक आयाम

- डिस्कनेक्ट करने की स्वतंत्रता अनुच्छेद 21 के तहत व्यक्तिगत स्वायत्तता से निकटता से जुड़ी हुई है।
- विधेयक इस संवैधानिक संबंध को स्पष्ट रूप से स्पष्ट नहीं करता है या यह नहीं बताता है कि कार्यस्थल पर स्वायत्तता कैसे संरक्षित की जाती है।
- इस बात पर अस्पष्टता छोड़ देता है कि क्या अधिकार वैधानिक है या एक गहरी संवैधानिक गारंटी को दर्शाता है।

निजी सदस्य विधेयक (PMB) के बारे में

- एक ऐसे सांसद द्वारा पेश किया गया जो मंत्री नहीं है।
- सत्तारूढ़ या विपक्षी दल का कोई भी गैर-मंत्री सांसद गैर-सरकारी सदस्य होता है।
- पीएमबी पर आमतौर पर संसदीय सत्र के दौरान शुक्रवार को चर्चा की जाती है।
- बहुत कम पीएमबी कानून बन जाते हैं:
    - आजादी के बाद से केवल 14 पीएमबी पास हुए हैं
    - 1970 के बाद से कोई पीएमबी पारित नहीं किया गया है

विधेयक एक महत्वपूर्ण प्रारंभिक बिंदु है, लेकिन डिजिटल युग में काम को फिर से परिभाषित किए बिना, श्रम संहिताओं के साथ संरेखित किए बिना, और इसकी कानूनी और संवैधानिक स्थिति को स्पष्ट किए बिना, यह अपर्याप्त है। भारतीय श्रम कानून भौतिक कार्यस्थलों के लिए डिज़ाइन किए गए ढांचे पर भरोसा करना जारी रखता है, जो डिस्कनेक्ट करने के अधिकार की प्रभावशीलता को सीमित करता है।